

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 56 — स्यमन्तक मणि

5 October 2026



प्रतिदिन स्वर्ण बरसाने वाली और अकाल को दूर भगाने वाली एक मणि सूर्यदेव से सत्राजित के पास, सिंह से ऋक्षराज के पास, और अन्त में उन श्रीकृष्ण के हाथों में पहुँचती है, जो अपना कलंक धोने के लिए अकेले एक अँधेरी गुफा में उतरते हैं और एक वधू के साथ बाहर आते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विङ्गडम् में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस छप्पनवें अध्याय में श्री शुकदेवजी राजा परीक्षित को स्यमन्तक मणि का इतिहास सुनाते हैं: सूर्यदेव ने वह मणि सत्राजित को कैसे दी, एक भाई की मृत्यु से श्रीकृष्ण पर मिथ्या आरोप कैसे लगा, और प्रभु ने मणि का पीछा जाम्बवान की गुफा तक कैसे किया और फिर दो वधुओं — जाम्बवती और सत्यभामा — के साथ द्वारका कैसे लौटे।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)

- अध्याय: 56 (षट्पञ्चाश अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: स्यमन्तक मणि
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: द्वारका, वह वन जहाँ प्रसेन आखेट को गया, और जाम्बवान की पर्वत-गुफा
- केंद्रीय विषय: स्यमन्तक मणि का दान; श्रीकृष्ण पर सत्राजित का कलंक; प्रभु की खोज, जाम्बवान से उनका द्वन्द्व और जाम्बवान द्वारा उनकी पहचान; मणि की वापसी तथा जाम्बवती और सत्यभामा से विवाह
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 56, श्लोक 1-45
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, दशम स्कन्ध)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

पचपनवें अध्याय में बताया गया कि शैशव में शम्बरासुर द्वारा चुराए गए प्रद्युम्न ने उसी का वध किया और रति के साथ द्वारका लौटकर सबको आनन्दित किया। अब शुकदेवजी एक मणि और प्रभु पर लगे एक कलंक की कथा की ओर मुड़ते हैं।

परीक्षित का प्रश्न

शुकदेवजी ने कहा कि सत्राजित ने श्रीकृष्ण के प्रति अपराध करके बाद में स्वयं ही, बड़े यत्न से, अपनी कन्या स्यमन्तक मणि सहित उन्हें अर्पित कर दी। राजा परीक्षित तुरन्त और जानना चाहते थे। सत्राजित ने श्रीकृष्ण का क्या अपराध किया था? उसे स्यमन्तक कहाँ से मिली? और उसने अपनी पुत्री श्रीहरि को क्यों दी? तब शुकदेवजी ने पूरा इतिहास कह सुनाया।

सूर्यदेव का उपहार

सत्राजित सूर्यदेव का भक्त था, और उसकी उपासना से प्रसन्न सूर्यदेव उसके साथ प्रिय मित्र-सा व्यवहार करते थे; उन्होंने ही उसे स्यमन्तक मणि प्रदान की। उस मणि को गले में धारण कर सत्राजित द्वारका में ऐसे प्रविष्ट हुआ मानो स्वयं सूर्य चल रहा हो — इतना प्रखर तेज कि कोई पहचान ही न सका कि वह कौन है। उस ज्योति से चौंधियाए नगरवासियों ने उसे साक्षात् सूर्यदेव समझा और दौड़कर प्रभु को सूचना दी, जो उस समय चौसर खेल रहे थे।

‘हे शंख-चक्र-गदाधारी नारायण, आपको नमस्कार,’ उन्होंने कहा। ‘हे दामोदर, हे कमलनयन गोविन्द, हे यदुनन्दन! अपनी किरणों से मनुष्यों की दृष्टि हर लेने वाले सूर्यदेव स्वयं आपके दर्शन को आ रहे हैं, हे जगत्पते। तीनों लोकों में श्रेष्ठ देवता आपका मार्ग खोजते रहते हैं; यह जानकर कि आप अब यदुवंश में छिपे हुए हैं, अजन्मा सूर्य आपको देखने चले आए हैं।’



सूर्यदेव से मिली स्यमन्तक पहनकर सत्राजित द्वारका में इतना दमकता हुआ प्रवेश करता है कि नगरवासी उसे स्वयं सूर्य समझ लेते हैं और चौसर खेलते श्रीकृष्ण को बताने दौड़ पड़ते हैं।

सत्राजित के घर में मणि

इन भोले वचनों को सुनकर कमलनयन प्रभु खिलखिलाकर हँस पड़े। ‘यह सूर्यदेव नहीं हैं,’ उन्होंने कहा, ‘यह तो सत्राजित है, जो अपनी मणि से दमक रहा है।’ सत्राजित उत्सव के लिए सजे अपने वैभवशाली भवन में ठाट से गया और ब्राह्मणों से मणि को अपने देवगृह में प्रतिष्ठित करवाया। उस मणि का प्रभाव अद्भुत था।

दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो ।

दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः ।

न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥ ११ ॥

dine dine svarṇa-bhārān aṣṭau sa sṛjati prabho durbhikṣa-māry-ariṣṭāni sarpādhi-vyādhayo
‘śubhāḥ na santi māyinas tatra yatrāste ‘bhyarcito maṇiḥ

अर्थ: हे प्रभो, वह मणि प्रतिदिन आठ भार स्वर्ण देती थी; और जहाँ वह विधिपूर्वक पूजित रहती, वहाँ अकाल, महामारी या अरिष्ट, सर्प, मानसिक क्लेश या शारीरिक रोग, और छली-कपटी लोग — कुछ भी नहीं रहते थे। (स्कन्ध 10, अध्याय 56, श्लोक 11)

एक बार श्रीकृष्ण ने सत्राजित से कहा कि ऐसी मणि यदुराज उग्रसेन को भेंट कर दे। किन्तु धन का लोभी सत्राजित मुकर गया, और उसने यह विचार तक न किया कि इस याचना को ठुकराने का क्या परिणाम होगा।

प्रसेन, सिंह और ऋक्षराज

एक दिन सत्राजित के भाई प्रसेन ने वह दीप्तिमान मणि अपने गले में बाँधी और घोड़े पर चढ़कर वन में आखेट को निकला। वहाँ एक सिंह ने उसे घोड़े सहित मार डाला और मणि लेकर चल दिया; और जब वह सिंह पर्वत की गुफा में प्रवेश कर रहा था, तब मणि के इच्छुक ऋक्षराज जाम्बवान ने उसे मार गिराया और मणि ले ली। अपनी गुफा में जाम्बवान ने स्यमन्तक को अपने नन्हे पुत्र का खिलौना बना दिया।

प्रसेन के न लौटने पर सत्राजित शोक से व्याकुल हो उठा और अपने लोगों से बोला: 'मेरा भाई मणि पहनकर वन गया था; अवश्य श्रीकृष्ण ने उसे मार डाला है।' जिन्होंने यह सुना, वे इसे कानों-कान फुसफुसाने लगे, और यह कलंक पूरे नगर में फैल गया।

प्रभु पदचिह्नों के पीछे

भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि ।

मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः ॥ १७ ॥

bhagavāṁs tad upaśrutya duryaśo liptam ātmani mārṣṭum prasena-padavīm anvapadyata nāgaraiḥ

अर्थ: अपने ऊपर इस प्रकार लगे अपयश को सुनकर भगवान् उसे धो डालने के लिए नगरवासियों के साथ उस मार्ग पर चल पड़े जिस पर प्रसेन गया था। (स्कन्ध 10, अध्याय 56, श्लोक 17)

पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए उन्हें पहले वन में सिंह द्वारा मारे गए प्रसेन और उसका घोड़ा मिले; और आगे पर्वत के ढलान पर उन्होंने उसी सिंह को देखा, जिसे एक रीछ ने मार डाला था। मार्ग एक भयानक गुफा के मुख तक जाता था, जो घोर अन्धकार से ढकी थी। श्रीकृष्ण ने लोगों को बाहर ठहराया और अकेले भीतर गए। वहाँ उन्होंने उस अमूल्य मणि को एक बालक का खिलौना बना देखा और उसे ले जाने का निश्चय कर शिशु के पास चुपचाप खड़े हो गए।



नगरवासियों को गुफा के द्वार पर छोड़कर श्रीकृष्ण अकेले घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं और मणि को जाम्बवान के शिशु का खिलौना बना पाते हैं।

गुफा में अट्ठाईस दिन

बालक की धाय ने ऐसे पुरुष को देखा जैसा उसने पहले कभी नहीं देखा था, और वह भयभीत-सी चीख उठी। बलवानों में श्रेष्ठ जाम्बवान ने वह चीख सुनी और क्रोध से जलता हुआ दौड़ा आया। आगन्तुक को साधारण मनुष्य समझकर और उनकी महिमा को न पहचानकर, ऋक्षराज उन्हीं प्रभु पर टूट पड़ा जो उसके अपने स्वामी थे।

स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनात्मनः ।

पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥ २२ ॥

sa vai bhagavatā tena yuyudhe svāminātmanaḥ puruṣaṁ prākṛtaṁ matvā kupito nānubhāva-vit

अर्थ: क्रोध से भरा और उनके प्रभाव को न जानने वाला जाम्बवान उन्हें एक साधारण मनुष्य मानकर उन्हीं भगवान से लड़ने लगा, जो उसके अपने आत्मा के स्वामी थे। (स्कन्ध 10, अध्याय 56, श्लोक 22)

फिर एक प्रचण्ड द्वन्द्व-युद्ध छिड़ गया; दोनों एक-दूसरे को पछाड़ने पर तुले थे, जैसे मांस के टुकड़े के लिए दो बाज़ लड़ रहे हों। पहले शस्त्रों से, फिर शिलाओं और वृक्षों से, फिर भुजाओं से, और अन्त में वज्र-जैसे कठोर मुक्कों से वे लड़े; और यह संग्राम बिना विराम के, दिन-रात, अट्ठाईस दिनों तक चलता रहा। अन्त में श्रीकृष्ण के मुक्कों की मार से जाम्बवान के जोड़ और मांसपेशियाँ चूर हो गईं; उसका बल और साहस चुक गया, उसके अंगों से पसीना बह चला, और घोर विस्मय में वह बोल उठा।



प्रभु को साधारण मनुष्य समझकर जाम्बवान अट्ठाईस दिनों तक दिन-रात उनसे लड़ता है, जब तक उसका बल चुक नहीं जाता और विस्मय नहीं जाग उठता।

जाम्बवान अपने स्वामी को पहचानता है

जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ।
विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥ २६ ॥

*jāne tvāṁ sarva-bhūtānāṁ prāṇa ojaḥ saho balam viṣṇuṁ purāṇa-puruṣaṁ prabhaviṣṇum
adhīśvaram*

अर्थ: अब मैं आपको जान गया: आप समस्त प्राणियों के प्राण, ओज, मनोबल और देहबल हैं — आप विष्णु हैं, पुराणपुरुष हैं, सर्वसमर्थ परमेश्वर हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 56, श्लोक 26)

जाम्बवान कहता गया: ‘आप ब्रह्मा आदि सृष्टिकर्ताओं के भी स्रष्टा हैं और समस्त सृष्ट पदार्थों के मूल तत्त्व हैं; आप नियन्ताओं के भी नियन्ता काल हैं और समस्त देहधारियों के परमात्मा हैं।’ तब उस वृद्ध ऋक्ष के हृदय में एक स्मृति फूट पड़ी। ‘आप मेरे प्रभु श्रीरामचन्द्र हैं,’ वह बोला, ‘जिनके ज़रा-से क्रोधभरे कटाक्ष से मगर और तिमिंगिलों सहित समुद्र क्षुब्ध होकर आपको मार्ग दे बैठा; जिन्होंने अपने यश के स्मारक-रूप सेतु बाँधा; जिन्होंने लंका को जला डाला, और जिनके बाणों से कटे राक्षसों के सिर धरती पर गिरे।’

तब कमलनयन देवकीनन्दन ने अपने भक्त को अपने शीतल हाथ से सहलाया और परम करुणा से, मेघ-सी गम्भीर वाणी में उससे कहा।

मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ।
मिथ्याभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनामुना ॥ ३१ ॥

maṇi-hetor iha prāptā vayam ṛkṣa-pate bilam mithyābhiśāpaṁ pramṛjann ātmano maṇināmunā

अर्थ: हे ऋक्षराज, इस मणि के लिए ही हम तुम्हारी गुफा में आए हैं; इसी मणि के द्वारा मैं अपने ऊपर लगे मिथ्या कलंक को धो डालूँगा। (स्कन्ध 10, अध्याय 56, श्लोक 31)

यह सुनकर जाम्बवान ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी कुमारी कन्या जाम्बवती को मणि सहित, अपने प्रभु के सम्मान की भेंट-रूप, श्रीकृष्ण को अर्पित कर दिया।

द्वारका का शोक और प्रभु की वापसी

गुफा के बाहर नगरवासी बारह दिनों तक श्रीकृष्ण के निकलने की प्रतीक्षा करते रहे। जब वे नहीं आए, तो वे दुखी होकर द्वारका लौट गए। यह सुनकर कि श्रीकृष्ण गुफा से नहीं निकले, देवकी, रुक्मिणी और वसुदेव, उनके सभी सुहृद और स्वजन उनके लिए शोक करने लगे; और द्वारकावासी सत्राजित को कोसते हुए प्रभु की सकुशल वापसी के लिए चन्द्रभागा नाम से विख्यात देवी दुर्गा की उपासना करने लगे। देवी ने आशीर्वाद दिया — और सहसा श्रीहरि स्वयं अपनी नई वधू के साथ, अपना प्रयोजन सिद्ध करके, उनके बीच प्रकट हो गए। हृषीकेश को पत्नी सहित और स्यमन्तक गले में धारण किए हुए देखकर — मानो वे मृत्यु से लौट आए हों — पूरा नगर उत्सव में डूब गया।



जाम्बवती के साथ द्वारका लौटकर श्रीकृष्ण राजा उग्रसेन की सभा में सत्राजित को बुलाते हैं, मणि-प्राप्ति का वृत्तान्त सुनाते हैं और उसे मणि लौटा देते हैं।

फिर प्रभु ने सत्राजित को राजा उग्रसेन की उपस्थिति में राजसभा में बुलाया, मणि की प्राप्ति का सारा वृत्तान्त सुनाया और मणि उसे सौंप दी। सत्राजित ने लज्जा से जलते हुए, मुख नीचे किए, मणि ली और अपने किए पाप का पश्चात्ताप करता हुआ घर लौट गया।

सत्राजित का पश्चात्ताप और सत्यभामा का विवाह

अपने उस एक अपराध पर बार-बार सोचता हुआ, और महाबली प्रभु तथा उनके अनुयायियों से हुए वैर से चिन्तित, सत्राजित मन में विचार करने लगा: 'मैं अपना यह मैल कैसे धोऊँ, और अच्युत कैसे प्रसन्न हों? मैं क्या करूँ जिससे मेरा भला हो और लोग मुझे अदूरदर्शी, क्षुद्र, मूर्ख और धन-लोलुप कहकर न कोसें? मैं उन्हें अपनी पुत्री — स्त्रियों में रत्न — और साथ में यह रत्न भी दे दूँगा। यही उचित उपाय है; अन्यथा इस वैर का अन्त नहीं होगा।'

अपनी बुद्धि से यह निश्चय करके सत्राजित स्वयं श्रीकृष्ण के पास गया और अपनी शुभ कन्या तथा स्यमन्तक दोनों उन्हें भेंट कर दिए। भगवान ने शास्त्रीय विधि से सत्यभामा का पाणिग्रहण किया — वह कन्या जिसे अनेक लोगों ने माँगा था और जो शील, रूप, उदारता और सभी गुणों से सम्पन्न थी।



अपने कलंक-भाषण पर पश्चात्ताप करता सत्राजित अपनी पुत्री सत्यभामा को मणि सहित श्रीकृष्ण को देता है; प्रभु शास्त्रीय विधि से उनका पाणिग्रहण करते हैं और स्यमन्तक उसके स्वामी को लौटा देते हैं।

भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ।

तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥ ४५ ॥

bhagavān āha na maṇim pratīcchāmo vyaṁ nṛpa tavāstāṁ deva-bhaktasya vyaṁ ca phala-bhāginah

अर्थ: भगवान ने कहा: हे राजन्, हम यह मणि नहीं लेना चाहते। यह तुम्हारे ही पास रहे, जो सूर्यदेव के भक्त हो; हम तो केवल इसके फल के भागी होंगे। (स्कन्ध 10, अध्याय 56, श्लोक 45)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. जो प्रभु से रोक लिया जाता है, वही बोझ बन जाता है। सत्राजित का अपराध मणि का स्वामी होना नहीं था, बल्कि धन के लोभ में प्रभु की उस याचना को ठुकराना था कि वह उसे राजा को दे दे। श्लोक 12 बताता है कि उसने परिणाम पर विचार ही नहीं किया; भाई की मृत्यु, कलंक और उसकी अपनी लज्जा — सब उसी एक इनकार से उपजे।

2. प्रभु अपने भक्तों के लिए अपने यश की रक्षा करते हैं। श्रीकृष्ण को किसी मणि से कुछ पाना नहीं है, फिर भी श्लोक 17 में वे स्वयं प्रसेन के पदचिह्नों पर चलकर मिथ्या आरोप मिटाने जाते हैं — वे अपने लोगों को अपने विषय में झूठ मानते हुए नहीं छोड़ते।

3. अज्ञान में प्रभु से लड़ना शरणागति में समाप्त होता है। श्लोक 22 कहता है कि जाम्बवान अपने ही स्वामी से इसलिए लड़ा क्योंकि वह उनकी महिमा को देख न सका। जिस क्षण उसका गर्व टूटा, उसी क्षण प्रभु पर प्रहार करने वाले उस ऋक्ष को प्रभु के अपने हाथ ने सहलाया।

4. पहचान थके हुए अहंकार का फल है। जब उसका बल चुक गया, तभी जाम्बवान कह सका 'मैं आपको जान गया' और उन्हें विष्णु तथा अपने प्रिय राम के रूप में पुकार सका, जैसा श्लोक 26 में अंकित है। भक्ति प्रायः हमारी शक्ति के शिखर पर नहीं, उसके अन्त पर उदित होती है।

5. प्रभु हृदय स्वीकार करते हैं, मूल्य अस्वीकार। जब सत्राजित पुत्री और मणि एक साथ अर्पित करता है, तब श्रीकृष्ण भक्तिमयी पुत्री को स्वीकार कर मणि लौटा देते हैं, जैसा श्लोक 45 दर्शाता है। प्रेम वे लेते हैं; दाम वे ठुकरा देते हैं।

एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय में मुझे सबसे अधिक यह बात छूती है कि जगत् के स्वामी अपना कलंक धोने का कष्ट स्वयं उठाते हैं। वे द्वारका की कानाफूसी को उपेक्षा के योग्य मानकर टाल सकते थे; पर वे वन में जाते हैं, पदचिह्न पढ़ते हैं, और अकेले उस गुफा में उतरते हैं जहाँ प्रकाश की एक किरण भी नहीं पहुँचती। और देखिए, वे इसे कैसे धोते हैं — सत्राजित को दण्ड देकर नहीं, बल्कि अँधेरे में अट्ठाईस दिनों के धैर्यपूर्ण श्रम से। जाम्बवान भी मुझे मेरे ही विषय में कुछ सिखाता है। कितनी बार मैं जीवन की भेजी हुई किसी बात से क्रोध में जूझता हूँ, उसे साधारण शत्रु समझकर, जबकि वह स्वयं स्वामी हैं जो मेरी गुफा में पधारे हैं? जब मेरी शक्ति चुक जाती है, तभी मैं ऊपर देखकर कहता हूँ, 'मैं आपको जान गया।' तब जो हाथ मुझ पर पड़ा था, वही हाथ मुझे सहलाने लगता है। स्यमन्तक प्रतिदिन स्वर्ण देती थी, पर श्रीकृष्ण ने उसे कभी अपने पास नहीं रखा। उन्होंने रखा केवल जाम्बवती और सत्यभामा को — उन्हें अर्पित हृदयों को। शायद मुझसे भी वे यही चाहते हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज उस एक वस्तु को स्मरण करें जिसे आप प्रभु से रोके हुए हैं — कोई सम्पत्ति, कोई योजना, कोई शिकायत, जिसे आप बन्द कमरे की मणि की तरह सँजोए बैठे हैं। उसे प्रार्थना में उन्हें अर्पित करें, यह याद रखते हुए कि उन्होंने सत्राजित से मणि केवल दूसरे को देने के लिए माँगी थी और अन्त में उसे लौटा दिया। फिर अपने बल के अन्त पर कहे गए जाम्बवान के शब्दों को अपना बना लें: 'मैं आपको जान गया।' आरम्भ में धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

दशम स्कन्ध का छप्पनवाँ अध्याय एक ऐसी मणि की कथा है जिसे प्रभु के हाथों से गुज़रे बिना कोई चैन से अपने पास न रख सका। सत्राजित के लोभ से कलंक उपजा; कलंक से गुफा में श्रीकृष्ण का उतरना, जाम्बवान की पहचान और जाम्बवती का दान; और प्रभु के धैर्य से सत्राजित का पश्चात्ताप और सत्यभामा का विवाह। हर भक्त जो एक बात साथ ले जा सकता है, वह है श्रीकृष्ण का अन्तिम वचन — उन्होंने स्वर्ण देने वाली मणि को अस्वीकार किया और उसके साथ अर्पित भक्ति को रख लिया। हम भी उन्हें अपना खज़ाना नहीं, अपना हृदय अर्पित करना सीखें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), अध्याय 56, पृष्ठ 351-355।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-56-the-syamantaka-jewel-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट